प्रश्न– आदिकाल के नामकरण की समस्या पर प्रकाश डालें?

उत्तर— शेषभाग

(5) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत :-

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस काल को 'आदिकाल' कहना ही उपयुक्त माना है। शुक्ल जी के वीरगाथा काल नाम पर आपत्ति करते हुए उन्होंने लिखा है कि वीरगाथा काल के अधिकांश ग्रंथ उस काल की रचनाएँ नहीं हैं, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। उनमें से अधिकांश रासो काव्य सोलहवीं अथवा सत्रहवीं शताब्दी की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। उदाहरण के लिए खुमान रासो के रचनाकाल के विषय में राजस्थानी साहित्य के विद्वान मोतीलाल मेनारिया का यह मत उद्धृत किया जा सकता है —

"द्विवेदी के विद्वानों ने उन्हें (खुमान रासो के रचयिता दलपति विजय को) मेवाड़ के राजा खुमाण (संवत 870 वि०) का समकालीन होना स्वीकार किया है, जो गलत है। वास्तव में उनका रचनाकाल संवत् 1730 और संवत् 1760 के मध्य में है।"

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो, जो वीरगाथा काल का प्रमुख महाकाव्य है, परवर्ती काल की रचना है, यही नहीं इसकी प्रामाणिता भी संदिग्ध है। द्विवेदी जी ने इसे अर्द्ध-प्रामाणिक रचना स्वीकार करते हुए इसके कुछ अंश को ही प्रामाणिक माना है।

आचार्य द्विवेदी ने ऐसे अनेक तर्कों के आधार पर यह निष्कर्ष दिया है कि जिन ग्रन्थों के आधार पर शुक्ल जी ने इस काल की मूल प्रवृत्ति का निर्धारण कर इसका नामकरण किया, उनकी प्रामाणिकता जब संदिग्ध हो उठे या वे परवर्ती काल की रचना सिद्ध हो गई हों, तब वह

नामकरण अनुपयुक्त और भ्रांत ही कहलायेगा।

द्विवेदी जी ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इस कालखण्ड को आदिकाल कहना ही उपयुक्त माना है, किन्तु एक सावधानी के साथ। उनका मत है, "वस्तुतः आदिकाल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावना, परम्परा विनिर्मुक्त, काव्य- रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है, यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी, रूढ़िग्रस्त और सजग एवं सचेत कवियों का काल है, - - - - यदि पाठक इस धारणा से सावधान रहे तो यह नाम बुरा नहीं है।"

आचार्य शुक्ल ने आदिकाल की साहित्यिक सामग्री पर विचार करते हुए जैनों, नाथों, सिद्धों की रचनाओं में धार्मिक भावना की प्रधानता देखकर उन्हें साहित्य- परिधि से बाहर कर दिया था और काल की प्रवृत्ति का निर्धारण करते समय इन रचनाओं पर विचार नहीं किया था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उनके इस मत की भी आलोचना की है। उनके अनुसार- "धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपदेश होना काव्य का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए अन्यथा हमें संस्कृत की रामायण, महाभारत, भागवत एवं हिन्दी के रामचरितमानस, सूरसागर आदि साहित्यिक सौन्दर्य संवलित अनुपम - ग्रंथ- रत्नों को भी ~~साहित्यिक~~ साहित्य की परिधि से बाहर रखना पड़ जायेगा।"

आचार्य द्विवेदी ने इन्ही सब बातों को ध्यान में रखकर इस काल को आदिकाल कहा है

वास्तव में आदिकाल नाम को विद्वानों के एक बड़े वर्ग ने किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया है। इस नाम से उस व्यापक पृष्ठभूमि का भी बोध होता है, जिस पर आगे के साहित्य का निर्माण हुआ, भाषा की दृष्टि से भी इस काल के साहित्य में हिन्दी के प्रारम्भिक रूप की जानकारी मिलती है। और भाव की दृष्टि से इसमें परवर्ती हिन्दी साहित्य में प्रवर्तित होने वाली प्रवृत्तियों का बीज मिलता है। शुक्ल जी के वीरगाथा काल नाम से जहाँ केवल एक प्रवृत्ति की प्रमुखता व्यंजित होती है, वहाँ आदि नाम से ऐसा कोई भ्रम नहीं होता, अतः इस दृष्टि से भी यह नामकरण अधिक व्यापक एवं उपयुक्त है।

(शेष क्रमशः जारी है।)

पता:-
डॉ० समदर्शी कुमार
विभाग- हिन्दी (S.R.A.R.C)
मो० न०० - 7909046087
दिनांक -09.02.2023